International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 240-242

"हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'स्त्रीविमर्श' : दशा एवं दिशा" विशेष सन्दर्भ : 'ठीकरे की मंगनी'

आनंद कुमार मिश्रा

शोध छात्र, पीएच०डी०, (हिंदी), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

स्त्रीविमर्श पितृसत्तात्मक समाज तथा दमनकारी पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ एक प्रतिरोध का स्वर है। स्त्रीविमर्श (फेमिनिस्ट डिस्कोर्स) की शुरूआत कब हुआ इसके संबंध में विद्वानों में सुनिश्चित एकमतता नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार इसका प्रारंभ 19वीं शताब्दी में हुआ लेकिन वास्तविकता यह है कि स्त्री–विमर्श 20वीं शताब्दी की देन है। 20वीं शताब्दी में भी कुछ लोग इसका प्रारम्भ फ्रांसीसी लेखिका 'सीमोन द बुआ' की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' (1949) के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं और कुछ मैरी एलमन की पुस्तक 'थिंकिंग एबाउट वीमन' (1968) के प्रकाशन वर्ष से। लेकिन अधिकांश विद्वान् इस तरह के किसी वर्ष विशेष को स्त्री–विमर्श का प्रस्थान बिन्दु मानना उचित नहीं समझते, क्योंकि 20वीं शताब्दी में ही इससे पहले भी स्त्री की अलग पहचान, उसके स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था। उदाहरण के लिए, वर्जीनिया वुल्फ ने अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ वंस ओन; (अपना निजी कक्ष : 1929) में लिखा था– "व्हाइटहाल के पास से गुजरते हुए किसी भी स्त्री को अपने स्त्रीत्व का बोध होते ही अपनी चेतना में अचानक उत्पन्न होने वाली दरार को लेकर आश्चर्य होता है कि मानव–सभ्यता की सहज उत्तराधिकारिणी होने पर वह इसके बाहर, इससे परकीय और इसकी आलोचक कैसे हो गयी है।" वर्जीनिया वुल्फ की इस पुस्तक ने यूरोप और अमेरिका के स्त्री–विमर्श को ही नहीं, भारतीय स्त्री–विमर्श को भी प्रभावित किया है। हिन्दी की घोषित नारीवादी लेखिका प्रभा खेतान/उपनिवेश में स्त्री : 2003) भी इस पुस्तक से प्रभावित हुई है और सिमेान द बुआ की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' से भी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री पर हुए अत्याचार, उसके शोषण व पुरुष द्वारा की गई बर्बरता को उजागर करने वाली पुस्तक डॉ0 धर्मवीर द्वारा सम्पादित 1882 में अज्ञात महिला द्वारा लिखी गयी 'सीमांतनी उपदेश' है।

मानव जाति की सभ्यता का इतिहास स्त्री जाति की पराधीनता एवं उसकी विवशता की करूण कहानियों से भरा पड़ा है। स्त्री को सदैव दोयम दर्जे का प्राणी माना जाता रहा है। आदिकाल से ही स्त्री को वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है, इन्हें भोग्या एवं बच्चे जन्मने से ज्यादा कुछ नहीं समझा गया। स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार कभी नहीं दिए गए, चाहे वे आर्थिक हो, सामाजिक हो, राजनैतिक हो अथवा सांस्कृतिक हो। बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, यौन उत्पीड़न, लूट आदि बर्बर सामाजिक दंश को स्त्री ने ही भोगा है। आज भी हमें सीता, द्रौपदी जैसी नारियाँ कहीं न कहीं दिख ही जाती हैं–

"सीता आज भी है, द्रौपदी आज भी है बस फर्क यह है कि सीता आज वन में भेजी नहीं जाती बल्कि घर में जला दी जाती है और द्रौपदी पाण्डवों के बीच नहीं दहेज की लपटों में बांट दी जाती है।"

मधु धवन जी स्त्री के अस्तित्व को, उसकी पीड़ा को उद्घाटित करते हुए लिखती हैं–

"मैं कौन हूँ?
एक लघु सा प्रश्न
पर गगन सा विस्तीर्ण, पर्वत सा दुर्गम।"

साहित्य चूंकि समय एवं समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा नाम है, अतः जीवन और जगत की कोई भी समस्या/विडम्बना उसकी विषय–परिधि से बाहर नहीं। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में स्त्री चेतना के बीज पाये जाते हैं।

प्रथम गद्य रचना 'देवरानी–जेठानी' की कहानी, 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती', 'सुन्दर शिक्षण' और 'परीक्षा गुरु' आदि में स्त्री चेतना निहित है। जैसे–जैसे समाज में नारी की स्थिति में बदलाव आया है, वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हुई है। आधुनिकता और बौद्धिकता के कारण स्त्री अपनी गुलाम मानसिकता वाली छवि, सती–साध्वी या पति–परमेश्वरी को तोड़कर अपना स्वतंत्र वजूद बनाना चाहती है। महादेवी वर्मा के अनुसार– "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी पर प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान वे स्वत्व चाहिए, जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेगी।" (शृंखला की कड़ियाँ, अपनी बात से) समकालीन महिला लेखन नारी के अस्मिता व स्वतंत्र अस्तित्व की खोज का लेखन है। वह अब पुरानी रूढ़ियों, रीति–रिवाजों को मानने के लिए विवश नहीं है। अपने निर्णय वह स्वयं ले सकने में सक्षम हो रही है। चित्रा मुद्गल के शब्दों में "नारी चेतना की मुहिम स्वयं स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आंदोलन है कि मैं भी मनुष्य हूँ और अन्य मनुष्यों की तरह समाज में सम्मानपूर्वक रहने की अधिकारी हूँ।" उनका 'आवां' उपन्यास स्त्री चेतना को अभिव्यक्ति देता समय भी पड़ताल करता है।

आज स्त्री चिंतन के समक्ष एक बड़ा सवाल, स्त्री की समाज में मुक्ति या समाज से मुक्ति के प्रश्न से है। स्त्री की यौन सुचिता को परिवार की इज्जत से जोड़कर देखा जाता है जबकि पुरुष को नहीं। स्त्री विमर्श के सामने एक समस्या श्थ्तममकवउ वि्मगश व थ्तमम वि्मगश की भी हैं। कुछ स्त्रीवादी लेखिकाएँ स्त्री की देह की मुक्ति को ही स्त्री मुक्ति मानती हैं। इस सन्दर्भ में मैत्रीय पुष्पा का कथन उल्लेखनीय है, वो कहती हैं– "देह के भोग को स्त्री–मुक्ति का साधन मानना चाहिए।" मैत्रीय पुष्पा अपने 'चाक' उपन्यास में रेशम, कलावती चाची और पहलवान कैलाशी सिंह के प्रसंग में योनि–शुचिता के मिथक को तोड़ती है। कलावती चाची, कैलाशी सिंह से सम्भोग करती है और कहती है– "पुरुष औरत को छुए तो उसका उद्धार करता है और औरत पुरुष को छू दे, तो उसे पाताल में डुबो दें, ऐसा क्यों?"

मैत्रीय पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास की नायिका मंदा का बलात्कार कैलाश मास्टर कर देता है। किन्तु वह अपनी देह को अपवित्र नहीं मानती है, उसे मन की पवित्रता से जोड़कर देखती है। वह अपना जीवन घुट–घुट कर नहीं काटती है। इसी तरह चित्रा मुद्गल, अनामिका, अर्चना वर्मा, सुधा अरोड़ा, चन्द्रकान्ता, दीप्ति खण्डेलवाल

आदि महिला लेखिकाओं ने योनि–शुचिता के मिथक के विरोध में, महिला लेखन के रचनात्मक जगत में एक ऐसी आधुनिक स्त्री को प्रस्तुत किया है, गढ़ा है जो उन्मुक्त भोग की समर्थक एवं पक्षधर है, जबकि दूसरी ओर कुछ महिला लेखिकाएँ इस उक्ति के विरोध में भी खड़ी दिखाइ पड़ती है उनका मानना है कि स्त्री देहमुक्ति उन्हें मन से मुक्ति के लिए है न कि ऐसी स्वतंत्रता जो सभी सीमाओं को तोड़कर अराजकतावादी मार्ग का अनुसरण करने लगे। इनमें ममता कालिया, राजी सेठ, सुमन राजे, मृदुला गर्ग आदि प्रमुख हैं।

आज जबकि भूमंडलीकरण का दौर चल रहा है तब ऐसे में नयी समाज में प्रगतिशीलता के साथ–साथ शोषण की प्रक्रिया और भी बढ़ी है। भूमंडलीकरण ने उपभोक्तवाद को बढ़ावा दिया है। ममता कालिया का 'दौड़ इस पूरे विमर्श की प्रस्तुति है। उपभोक्तावादी संस्कृति की विरूपता को व्यक्त करती रचनाओं में नीलम शंकर की 'प्रतिशोध', अल्पना मिश्र की 'पड़ाव' जैसी रचनाएँ समाज को दिशा देने की दृष्टि से उल्लेखनीय हें। स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखिकाओं ने नैतिक मूल्यों के प्रति जागृत होकर हिन्दी कथा साहित्य को नयी दिशा देने का प्रयत्न किया है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, प्रभा खेतान, मैत्रीय पुष्पा आदि लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री की साहसिकता का परिचय देकर उसकी मानसिक पीड़ा को बहुत ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी है। मैत्रीय पुष्पा के चर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' को स्त्री संघर्ष का जीवंत दस्तावेज कहा जाता है। वैश्विक तथा भारतीय परिवेश में स्त्री शोषण की कहानी सुनाने वाला एक और उपन्यास है– 'कठ गुलाब'। मृदुला गर्ग का 'मैं और मैं' एक महिला लेखिका की जिन्दगी के संघर्ष को चित्रित करने वाला उपन्यास है। स्त्री जीवन के अकेलेपन को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चलं' में आइलिन के पात्र से अभिव्यक्ति किया है।

"औरत कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितना भी रोती है, उतनी ही औरत होती है।" आइलिन अपने पति और पाँच प्रेमियों के सम्पर्क में आने के बावजूद भी वह स्वयं को अकेला महसूस करती है और अपने कुत्ते पेपे को ही अपने दुःख का भागीदार बना लेती है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में लेखिका (प्रभा खेतान) ने एक ऐसे समाज का चित्रण किया है जहाँ स्त्री के लिए सारे रिश्ते–नाते बे–मायने हो जाते हैं। स्त्री पर पल–पल, हर स्तर पर होने वाले शोषण को दिखाया है। शोषित नायिका शोषण के चरम स्तर को सहती हुई जाग्रत होती है और विद्रोह करती है। इस उपन्यास में अपनी बहन पर भाई द्वारा अत्याचार, पुरुष–प्रधान समाज में नारी की स्थिति का बोध कराता है। कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में मुख्य स्त्री पात्र मित्रो को मध्यवर्गीय परिवार की रूढ़ियों और परम्पराओं का विरोध करती हुई दिखाया है। इस उपन्यास की नायिका मित्रो अपना विद्रोह इस प्रकार व्यक्त करती है– "क्या स्त्री की कोई यौन इच्छा नहीं होती? अपने ठण्डे पति के साथ, अपनी समस्त इच्छाओं का गला घोंटते हुए, जीवन–यापन करना उचित है?"

आज महिलाएँ पारम्परिक रूढ़िवादी सोच को चुनौती देती हुई पूरे साहस के साथ खुलकर अपनी बात कह रही हैं। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'शाल्मली' (1987) जिसके घर और बाहर अपने अधिकार मांगती आजादी के बाद की उभरती एक अलग किस्म की स्वतंत्रचेता स्त्री है जो पति से संवाद चाहती है, बराबरी का दर्जा चाहती है, प्रेम की मांग करती है जो उसका हक है। शल्मली एक स्थान पर कही है "मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ, मेरी नजर में नारी–मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच, स्त्री की स्थिति को बदलने में है।"

नासिरा शर्मा का एक और चर्चित उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' (1989) मुस्लिम समाज की उस सच्चाई को उजागर करता है, जहाँ स्त्रियों की स्थिति अपमानजनक और बदतर दिखाई पड़ती है। लेखिका ने इस उपन्यास में यौन समस्याओं के साथ–साथ जीवन के अनेक प्रश्नों को उठाया है, जो आज भी कदम–कदम पर नारी का रास्ता रोके रखती है। यह एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें नायिका महरूख की दास्तान के माध्यम से दो खिड़कियाँ खुलती हैं, जिनमें एक गाँव है, वहाँ का स्कूल है, गाँव के असहाय लोग हैं, जिनके छोटे–छोटे दुःखों से भी वह विचलित हो उठती है। दूसरी तरफ एक परम्परागत मुस्लिम खानदान हे, उसमें रह रहे लोगों के अपने–अपने सरोकार और टकराव हैं। इन दोनों ही परिवेशों से गुजरते हुए महरूख बदहवास दुनिया की सच्चे अर्थों में पड़ताल करती है और चुनती है अपने लिए उस थरथराते सत्य को, जो उसे अकेला तो कर देता है, पर सशक्त ढंग से खड़ा होना सिखा देता है।

नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के जरिए पुरुषवादी मानसिकता को बड़े ही पुरजोर ढंग से प्रस्तुत किया है। पुरुषों का स्त्रियों के प्रति अवसरवादी दृष्टि को इस उपन्यास में लक्षित किया गया है। जैदी खानदान को चार पुश्तों से लड़की नसीब नहीं होती है, सभी के दिलों में एक लड़की की तमन्ना हिलोरे मारती रहती है जब चार पुश्तों बाद खुदा की नियामत से एक लड़की (महरूख) जन्म लेती है तब सभी खुशियों से झूम उठते हैं तरह–तरह की बातें होती हैं– "सच कहा है किसी ने, लड़की घर की बरकत होती है।" बड़ी चची जूही के फूलों की बाली तागे से पिरोकर कान में पहनते हुए कहा। "रसूले खुदा का घर भी लड़की की रोशनी से मुनव्वर हुआ था, लड़कियाँ तो प्यार की बरकत होती हैं।" छोटी चची ने नन्हें–नन्हें मोजों को प्यार से देखते हुए कहा और इसी तरह किसी ने उस लड़की को खुदा की नियामत तो किसी ने नगर की रौनक कहा। सभी उसे खूब लाड़ प्यार करते हैं वह कहीं भी उन्मुक्त खेल–कूद, घूम–टहल सकती थी यहाँ तक की महरूख की पैदाइश के बाद तले–ऊपर चार लड़कियाँ, रेशमा, सनोवर, गुलनार और शहनाज और उसके बाद अब्बास तथा हैदर पेदा होते हैं परन्तु इनके जन्म से भी महरूख का महत्त्व कम नहीं होता है। लेकिन जैसे–जैसे महरूख बड़ी होती जाती है सभी के आँखों की किरकिरी बनने लगती है। उस पर तमाम तरह की पाबंदियाँ लगायी जाने लगती हैं। उसे लड़की होने का एहसास दिलाया जाने लगता है। महरूख की पैदाइश के दौरान ही उसकी खाला के लड़के (रफत भाईजान) से 'ठिकरे की मंगनी' हो जाती है। रफत मियां महरूख को दिल्ली ले जाते हैं, साथ पढ़ाने के लिए पर वहाँ किसी से ये नहीं कहते हैं कि मैं इसका भावी पति या मंगेतर हूँ बल्कि अपनी कजिन बताते हैं। महरूख को दिल्ली की जिंदगी पसंद नहीं आती परंतु वह रफत भाई के समझाने व वक्त के साथ बदलने की दलील पर उनकी खुशी के लिए अपने को उस जिंदगी में ढालने की पूरी कोशिश करती है। रफत मियां साम्यवादी विचारधारा के होते हैं और बाद वो पीएच0डी0 करने अमेरिका चले जाते हैं इधर महरूख उनके साथ जिंदगी बिताने के सपने बुनती अपने को उनके रंग में ढालने की पुरजोर कोशिश में लगी रहती है, एक दिन पता चलता है कि रफत मियां फारेन में 'लिव इन टूगेदर' में रह रहे हैं। इस पर वह पहले तो विश्वास नहीं करती फिर पूरी तरह टूट जाती है और घुटन व उदासी की जिंदगी जीने लगती है। परन्तु वह टूटकर बिखरती नहीं बल्कि अपने आत्मविश्वास को मजबूत कर गाँव चली जाती है और टीचर की जिंदगी चुनती हुई शिक्षा और परिवार को अपनी बाकी जिंदगी समर्पित कर देती है। महरूख अपनी जिंदगी से आने वाले पीढ़ियों को एक बड़ी सीख व साहस देती नजर आती है। महरूख के जरिए लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री और पुरुष मन के बीच के फर्क को समाज की सोंच को और

एक स्त्री मन के रिक्त स्थान को बड़े ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। औरत को कैसा होना चाहिए उसी की कहानी यह उपन्यास है। लेखिका महरूख के जरिए स्त्री को बता देना चाहती है कि कोई भी रिश्ता समझौते की बुनियाद पर नहीं टिकता और इस बेसकीमती जिंदगी का सिर्फ एक के लिए खत्म करना नासमझी ही नहीं जुर्म भी है। "हमें मर्द नहीं बनना है, न ही मर्द को औरत बनाना है। एक–दूसरे का लबादा पहनने की यह ललक ही मुसीबत बन रही है। जरूरत है अपनी–अपनी जगह खड़े होकर अपने आपको समझने और दूसरे को समझाने की। जब समझ कह दे, यह नामुमकिन है तो उसे कबूल कर लो, मगर इस तरह से मर के नहीं, याद रखो, इंसान को जिंदगी सिर्फ एक बार मिलती है और उसे एक के लिए खत्म करना नासमझी ही नहीं, जुर्म भी है।"
आज हर समाज में स्त्रियाँ अपना जीवन एक संघर्षात्मक ढंग से जी रही हैं। आज भी दहेज के नाम पर सैकड़ों स्त्रियों को मार दिया जाता है, कामकाजी स्त्रियों को यौन उत्पीड़न झेलना पड़ता है। स्त्री हर जगह शोषण की शिकार होती दिखाई पड़ती हैं। जिस भी स्त्री के साथ बलात्कार होता है, वह कौमार्य अथवा सतीत्व–भंग की क्षति ही नहीं सहती बल्कि गहन भावनात्मक दंश, मानसिक वेदना, भय, असुरक्षा और अविश्वास प्रायः आजीवन उसका पीछा नहीं छोड़ते। हमारे समाज में अधिकतर अधिकार क्षेत्र पुरुषों के हैं और अधिकतर कर्त्तव्य स्त्रियों के।
गीतांजलि श्री अपने उपन्यास 'भाई' में लिखती हैं कि– "पत्नियाँ पतियों के लिए तो व्रत रखती हैं पर पति पत्नियों के लिए क्यों नहीं? स्त्री–पुरुष के बीच आखिर सेक्स और प्रेम के सम्बन्ध में खुली बातचीत क्यों नहीं हो सकती। जो माँ बन सकती है, वह अपवित्र कैसे?"
समकालीन उपन्यास साहित्य स्त्रियों के इन्हीं समस्याओं, अकेलेपन, घुटन, संघर्ष, शोषण और मनःस्थिति को समाज के समक्ष रखता है ताकि इस अन्धेरी बौखलाई और कुण्ठा व रूढ़िवादिता के मकड़जाल में उलझी समाज को एक सही व तार्किक दिशा प्रदान कर सके। स्त्रियों में जागृति, आत्मविश्वास जगाने और अपने अस्तित्व की पहचान कराने में विभिन्न विचारकों एवं लेखिकाओं ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज जरूरत है स्त्री को हर क्षेत्र (शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक) में सशक्त बनने की और इसके लिए जरूरी है कि स्त्रियाँ स्वयं आगे आयें अपने प्रतिरोध के स्वर को और भी तीव्र करें, अपनी अस्मिता पहचानें, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनें, अपनी बातें खुलकर रखना सीखें व अपने साथ हो रहे अन्याय व अत्याचार का मुखर होकर विरोध करें।

सन्दर्भ सूची

1. 'ठीकरे की मंगनी', नासिरा शर्मा, संस्करण–2010.
2. 'स्त्री–विमर्श' का कालजयी इतिहास, सम्पा0 डॉ0 संजय गर्ग, संस्करण–2014.
3. http://www.rachanakar.org/212/02/blog_post
4. http://www.opnimaat.com/2013/11/blog_post